दिसंबर 22, 2005

सत्र 3

अध्यक्षः प्रोफेसर अमिताभ मुखर्जी

प्रोफेसर अमिताभ मुखर्जीः नमस्कार, इस सत्र में वक्ता हैं मॉन्ट्रियल विश्वविद्यालय के प्रोफेसर राजेंद्र सिंह। वे एक भाषाविद हैं और पिछले 32 वर्षों से कनाडा में रह रहे हैं। उनके वक्तव्य के बाद प्रोफेसर विजय वर्मा और रोहित धनकर टीकाकार होंगे और उसके बाद पर्चे पर खुली चर्चा होगी।

प्रोफेसर राजेंद्र सिंह

विज्ञान की प्रकृति और विस्तार

मैं एक-दो प्रारंभिक टिप्पणियों से शुरू करूंगा। मेरे अपने विषय की परंपरा का पालन करते हुए, मैं कहूंगा कि मेरा पर्चा उस चीज़ के बारे में है जिसे मैं विजय वर्मा की समस्या कहूंगा। भाषा विज्ञान में गंभीर समस्याओं का नामकरण प्रतिष्ठित विद्वानों के नाम पर करने का रिवाज़ है। जैसे हमारे यहां देकार्ते समस्या है, ओर्वेल समस्या है। मेरा पर्चा मुख्यतः विजय वर्मा समस्या के बारे में रहेगा। इससे मुझे मदद मिलेगी कि जो कुछ मैं कहना चाहता हूं, उसे विजय वर्मा ने पिछले सत्र में जो कुछ कहा था, उससे जोड़ सकूं। उन्होंने बिलकुल सही कहा था कि हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि विज्ञान को "संपूर्ण ज्ञान के एक अंतिम भंडार के रूप में" पेश न किया जाए। मैं अपने पर्चे में इस बात पर विचार करूंगा कि विजय वर्मा की इस शर्त को पूरा करने के लिए हमें क्या करना होगा। मैं प्रारंभिक टिप्पणी के रूप में विजय वर्मा से क्षमा याचना भी करना चाहूंगा। इस क्षमा याचना का सबब आपको हैण्ड-आउट क्रमांक 1 को देखकर स्पष्ट हो जाएगा। बिंदु क्रमांक 1 में विज्ञान के विविध गुणधर्म या परिभाषाएं प्रस्तुत की गई हैं और बताया गया है कि विज्ञान के समूचे इतिहास में विभिन्न लोगों ने विभिन्न सीमाएं चुनी हैं। जैसे कुछ लोग विज्ञान की सीमा भौतिकी तक मानते हैं, जबकि कुछ लोग एक कदम आगे जाकर भौतिकी और रसायन को शामिल कर लेते हैं, कुछ लोग और आगे जाकर भौतिकी, रसायन और जीव विज्ञान पर सीमा निर्धारित करते हैं और इन्हें प्राकृतिक विज्ञान नामक समूह में रखते हैं।

हम एक कदम और आगे जाकर कह सकते हैं कि विज्ञान के अंतर्गत प्राकृतिक व पुनर्निर्मिति विज्ञान (re-constructive sciences - इस शब्द का उपयोग अध्ययन की उन शाखाओं के लिए किया जाता है, जिनमें प्रमाणों के आधार पर यथार्थ को पुनर्निर्मित किया जाता है।) शामिल हैं या प्राकृतिक विज्ञान व संज्ञान शास्त्र शामिल हैं या और आगे जाएं तो प्राकृतिक, संज्ञान और पुनर्निर्मिति विज्ञान को शामिल कर सकते हैं। ऐसा करते-करते आप उस मत पर पहुंच जाएंगे जिसने सत्रहवीं सदी से, काफी ठोस कारणों से, दर्शन व विज्ञान के बीच भेद करने से इन्कार किया है; यह मूलतः देकार्ते का मत है। मैं जो कुछ कहूंगा और अन्य लोगों ने जो कुछ कहा है, उनमें शब्दावली की गफलत से बचने के लिए यह कह रहा हूं। तो आप विज्ञान शब्द का इस्तेमाल कैसे करते हैं, यह सुविधा का मामला है, हम अपनी ज़रूरत के मुताबिक सीमा रेखा तय करते हैं।

एक आखरी प्रारंभिक टिप्पणी और। मैं कोई दार्शनिक नहीं हूं और वैज्ञानिक भी इस शब्द के पारंपरिक अर्थ में ही हूं। मैं एक अदना-सा व्याकरणविद हूं और मुझे लगता है कि मैं उन चीज़ों पर विचार करता हूं, जिन्हें आपके साथ साझा करने के लिए मुझे आमंत्रित करने की उदारता रमाकांत ने दिखाई है, क्योंकि मैं जब भी कुछ लिखता हूं (जो कभी-कभार ही होता है) तो हमेशा यह सवाल शेष रहता है - मैंने जो कुछ कहा, वह क्यों कहा? और मैं हमेशा संज्ञान की इस नाज़ुक स्थिति में रहता हूं कि खुद से पूछूं कि मैंने पिछले साल ऐसा क्यों कहा था? मैंने अपने पर्चा क्रमांक 1 में या पर्चा क्रमांक 2 में जो कुछ कहा था, उसका मतलब क्या है? और यह एक कारण है कि क्यों मैं ज़्यादा पर्चे नहीं लिखता क्योंकि एक पर्चा लिखने में कुछेक साल लग जाते हैं और उसका मतलब समझने में एकाध दशक लग जाता है। तो मैं कोशिश करूंगा कि वे टिप्पणियां प्रस्तुत कर दूं जो मैंने इस सिलसिले में जुटाई हैं कि क्यों मैं ये सवाल पूछता रहता हूं।

यदि आप एक पन्ने के हैण्ड-आउट में दिए गए उपशीर्षकों को देखें, तो ये विज्ञान शिक्षा की अन्य व्याख्याओं पर कुछ अपूर्ण विचार हैं। मैं यह मानकर चलता हूं कि विज्ञान शिक्षा की अचिन्हित व्याख्या ही विज्ञान को आम लोगों तक ले जाने का तरीका है। मेरे ख्याल से दूसरी व्याख्या इस प्रकार है : "विज्ञान के रूप में किसी चीज़ को आम लोगों के पास ले जाने से पहले वैज्ञानिकों को क्या पता होना चाहिए?x तो मैं समझता हूं कि अचिन्हित व्याख्या विज्ञान शिक्षा की अभिजात्य व्याख्या है। कुछ वैज्ञानिक कुछ हद तक मनमाने ढंग से तय करते हैं, जैसा कि हैण्ड-आउट के बिंदु

क्रमांक 1 में बताया गया है, कि क्या चीज़ है जिसे परोसा जा सकता है। और विज्ञान शिक्षा का मकसद है कि इस जानकारी को या इस संरचना को या प्रक्रियाओं के इस समूह को उन लोगों तक पहुंचाए जो इनसे परिचित नहीं हैं। इस संदर्भ में इस सवाल का शिक्षाई संस्करण आपका पीछा करता है कि शासकों को शासन करने के नियम कौन सिखाएगा? यानी वैज्ञानिकों को कौन बताएगा कि विज्ञान क्या है? इसे मैं गैर-अभिजात्य व्याख्या मानता हूं। और मेरा मत है कि प्रोफेसर वर्मा की शर्त तभी पूरी हो सकती है जब हम गैर-अभिजात्य व्याख्या को स्वीकार करें। विज्ञान को 'संपूर्ण ज्ञान के अंतिम भंडार' के रूप में हस्तांतरित करने पर रोक सिर्फ तभी लग सकती है जब विज्ञान शिक्षा की गैर-अभिजात्य व्याख्या को ध्यान में रखा जाए। इन प्रारंभिक टिप्पणियों के बाद मैं लिखित पर्चा पढ़ने का प्रयास करता हूं।

चूंकि यह लगभग एक विडंबना ही है कि जो लोग दुनिया को बदलना चाहते हैं वे प्रायः सिर्फ उन बदलावों का विवरण दे पाते हैं जो उन लोगों द्वारा लाए गए हैं, जो मात्र दुनिया का वर्णन करने का दावा करते हैं - निसंदेह उन चीज़ों के प्रति निहित निष्ठा के फलस्वरूप जिन्हें 'तकनीकी रुचि' कहा गया है (खास तौर से युर्गेन हैबरमास की रचनाओं में) - इसलिए हमें विज्ञान की प्रकृति व विस्तार को समझना ही चाहिए (दोनों या हर तरह के विज्ञान जिसमें प्राकृतिक विज्ञान तो शामिल हैं ही)। लिहाज़ा यह पर्चा पेश है जिसमें मैं सामान्य तौर पर विज्ञान पर विचार करने का प्रयास करूंगा, और इसमें तथाकथित प्राकृतिक, पुनर्निर्मिति व आलोचनात्मक विज्ञानों को शामिल करूंगा। चूंकि विज्ञान को आम तौर पर प्राकृतिक विज्ञान समझा जाता है, इसलिए मैं इस व्याख्या पर ज़्यादा ध्यान दूंगा।

हालांकि मैं क्वांटम अनिश्चितता के भौंडे लोकप्रियकरण को माफ नहीं करता। यह तो समझा जा सकता है कि ये लोकप्रियकरण यांत्रिक अहंकार के विरोध के रूप हैं, मगर ये इस बात की गलत व्याख्या करते हैं कि दो राशियों को हम जिस परिशुद्धता से नाप सकते हैं उस मिली-जुली परिशुद्धता की एक सीमा है। वे इसकी व्याख्या इस रूप में करते हैं कि यह व्यक्तिनिष्ठता के पक्ष में और/या आधुनिक भौतिकी के पराभव का प्रमाण है। मैं यह ज़रूर मानता हूं, जैसा कि सिविन (1989) ने काफी ज़ोरदार ढंग से कहा था, कि प्राचीन चीनी खगोल शास्त्रियों (दार्शनिकों की बात नहीं है) का पुनरावलोकन करना उपयोगी होगा - आखिर चीन पर ही तो यह 'इल्ज़ाम' है कि वहां विज्ञान के प्रादुर्भाव से पहले भी विज्ञान था (देखें नीडहैम 1954)। उन्होंने पूछा था कि क्या प्रकृति को विज्ञान की तार्किक, अनुभव-आधारित (rational, empirical) विधि या विधियों से पूरी तरह समझा जा सकता है, और इस संदर्भ में दो तरह की अनिश्चितताओं का संकेत दिया थाः (1) ज्ञानमूलक अनिश्चितता, जो ब्रह्मांड को इन विधियों से जानने की संभावना से इन्कार करती है और (2) अस्तित्वमूलक अनिश्चितता जिसका दावा है कि एक हद के बाद ब्रह्मांड में उस तरह की व्यवस्था अनुपस्थित है जिसकी खोज के लिए आनुभविक विधि बनी है और जिसे वह खोज सकती है।

विज्ञान की हालिया समीक्षा, जिसे फेयरअबेंड, बोह्म, पेनरोज़, गैडामर, हैबरमास व अन्य ने मुखरित किया है, में स्पष्ट किया गया है कि पैराडाइम परिवर्तन (देखें कुन) की समस्या के मद्दे नज़र, जिस ढंग से भोले-भाले वैज्ञानिक सत्य और सिद्धांत के बीच संगति मानते हैं, उसे स्वीकार करना अब संभव नहीं है। यदि ऐसा है, तो विज्ञान की प्रकृति और विस्तार को समझने के लिए, खास तौर से विस्तार को समझने के लिए, 'तकनीकी रुचि' (प्रकृति पर नियंत्रण) का सहारा लेना ज़रूरी हो जाता है। हालांकि इस रुचि के परिणामों को भोले-भाले वैज्ञानिक तो महज स्वाभाविक गौण उत्पाद मानते हैं जबकि वे लोग विज्ञान की सफलता के प्रतिमान मानते हैं जो संगति के सिद्धांत का बचाव करना चाहते हैं और टेक्नॉलॉजी को विज्ञान कहकर बढ़ावा देना चाहते हैं। जैसी कि रैम्से और स्ट्रॉसन ने दलील दी है, यह स्पष्ट है कि सत्य वैज्ञानिक कथनों को सत्य इसलिए माना जाता है कि, जैसा कि हेस (1982) कहते हैं, सत्य वैज्ञानिक कथन वास्तव में एक भाषा विशेष या वैज्ञानिक सिद्धांत के अंतर्गत वस्तु की व्याख्या या चित्रण है। इस प्रश्न में तकनीकी रुचि न सिर्फ 'सत्य' को धरातल देती है बल्कि वह आनुभविक निष्ठा भी पैदा करती है, जो वैज्ञानिकों को अतिशय सापेक्षतावाद से बाहर निकालने के लिए ज़रूरी है, उस किस्म की सापेक्षता जो न्यूटन को जादू-टोने के समकक्ष रख देगी।

भाषा और वैज्ञानिक सिद्धांतों की स्पष्ट समानताओं को देखते हुए - जैसे भाषा के साथ वैज्ञानिक सिद्धांतों के मानक निरूपण की तुलना करें, खास तौर से अनुवाद की असंभवता (क्वाइन), सिद्धांत-निर्भरता और अर्थ-भेद , जिनकी बात इस सम्मेलन में की गई है - इनमें से कई समस्याएं आसानी से साधारण भाषा में प्रस्तुत की जा सकती हैं। जैसे 'गांधी की मृत्यु' और 'गांधी की हत्या' दो अलग-अलग तथ्य हैं मगर ये दो कथन एक ही घटना के द्योतक हैं।

मैं यह कहकर समाप्त करूंगा कि किसी हार्डी के विज्ञानवादी या यहां तक कि एक घटकवादी बनने के प्लेटोवादी सैद्धांतिक अहंकार से घबराने की ज़रूरत नहीं। मगर एकीकरण के उस प्रोजेक्ट को पूरी तरह पुनर्जीवित करने के प्रयास की ज़रूरत है जो वर्तमान सापेक्षतावादी उत्तर-आधुनिकता से आगे जाए, जो अक्सर रंग के सिद्धांत और सिद्धांत

के रंग के बीच भेद करने से इन्कार करती है और खामियों को दूर करने की बजाय पूरी चीज़ को ही खारिज करती है।

जिन मसलों का ज़िक्र मैंने किया है उनके विस्तार में जाने के लिए विज्ञान की मोटी-मोटी पहचान ज़रूरी है। 'विज्ञान' शब्द के आम उपयोग में विज्ञान और उसकी विधियों के बीच एक संरचनात्मक कड़ी स्थापित की जाती है। इस विधि की पहचान अक्सर एक तार्किक, आनुभविक रूप में की जाती है और इसे दर्शन से अलग किया जाता है, बावजूद इसके कि विज्ञान का सिद्धांत, वे बुनियादी अवधारणाएं जो विज्ञान को उसका वस्तुनिष्ठ दायरा प्रदान करती हैं, उन्हें विज्ञान का दर्शन भी कहा जाता है, जैसा कि गैडामर ने कहा है। चोम्स्की व अन्य बताते हैं कि यह पृथक्करण अपेक्षाकृत नया है और देकार्ते में नहीं था। गैडामर हमें यह भी याद दिलाते हैं कि 'आनुभविक विज्ञान' जैसा जुम्ला प्राचीन यूनानी लोगों को हथौड़े जैसा लगता, और विज्ञान की हमारी आम कल्पना को यूनानी लोग इस रूप में समझते कि यह वह ज्ञान है जिसके आधार पर, उनके शब्दों में, कुछ बनाने या उत्पादन की क्रिया संभव है, दूसरे शब्दों में वे इसे टेक्नॉलॉजी (या उनके शब्दों में टेक्ने) ही मानते। ज़ाहिर है, बीच के वर्षों में कुछ हुआ है। इस बात की ज़ोरदार दलीलें दी गई है कि जिस संक्षिप्तीकरण की बात मैं कर रहा हूं, वह न सिर्फ एक नई आर्थिक व्यवस्था के साथ बल्कि आधुनिकता की आम तौर पर स्वीकार्य पहचान - अपडेट करो या फना हो जाओ (जैसा कि मुझे एक होशियार किशोर कंप्यूटर उपयोगकर्ता ने घुमा-फिराकर बताया था) - के साथ भी मेल खाता है। स्वाभाविक रूप से इसके साथ वस्तुनिष्ठता की धारणा जुड़ी है, जिसे आम तौर पर परिमेयता के रूप में समझा जाता है, जिस धारणा को भौतिकी ने सांख्यिकीय विधियों के बढ़ते उपयोग के चलते पुष्ट किया है। इस बिंदु पर गैडामर का यह भावुक वक्तव्य स्मरणीय है कि 'मानविकी' इस बात का ऐलान है कि मानव शास्त्र में हम वस्तुओं की दुनिया का अध्ययन नहीं करते बल्कि मानव के स्वयं के बारे में ज्ञान और उसके रचना संसार का अध्ययन करते हैं जिसमें वह अपना यह ज्ञान संचित करता है, और उन्हीं विधियों और मापदंडों की मदद से करता है जिन पर विज्ञान को गर्व है।

विज्ञान की लोक लुभावन धारणा की बात न करें तो भी लोकप्रिय धारणा के साथ वह चीज़ जुड़ी होती है जिसे वैज्ञानिक व उनके हिमायती अपूर्वानुमेयता (unpredictibility) की समाप्ति के वायदे के रूप में प्रचारित करते हैं, तो इसके मद्दे नज़र यह देखने का वक्त आ गया है कि कुछ प्राचीन वैज्ञानिक पूर्वानुमेयता के बारे में क्या कहते थे। उनसे शुरू करना सिर्फ इसी कारण से ज़रूरी नहीं है कि विज्ञान को अभी इस बात को जज़्ब करना है कि जब से वह स्वयं अपना इतिहास मानता है, उससे पहले भी प्राचीन चीन में विज्ञान किया जाता था। ऐसा करने का एक कारण यह भी है कि इससे हम उस आपत्ति से भी बच पाएंगे कि दार्शनिक लोग ही तय करते हैं कि वैज्ञानिक जो कुछ करते हैं उसके बारे में क्या कहते हैं।

जब यह स्पष्ट हो गया कि आकाशीय परिघटनाओं के बारे में हान परिकल्पना अब और टिक नहीं सकती, तो चीन के खगोल शास्त्री ज्ञानमूलक व अस्तित्वमूलक अनिश्चितता का सामना करने को मजबूर हो गए थे। उन्होंने करुणा और विनम्रता के साथ कहा था कि कई बार पूर्वानुमान करने की क्षमता हासिल करने के लिए व्याख्या की बलि देनी होती है। व्याख्या के रूप में इसकी जो कीमत चुकाई जाती है, वह एक भारी कीमत है क्योंकि एक सुसंगत व ज्ञेय ब्रह्मांडीय व्यवस्था की मांग ही एकमात्र चीज़ है जो एक व्याख्या का रूप ले सकती है, और इसी ने कॉपरनिकस, गैलीलियो, केप्लर जैसे लोगों को एक दिशा में नवाचार करने को प्रेरित किया था, वह दिशा जो आधुनिक विज्ञान के लिए निर्णायक साबित हुई। उक्त चीनी गणितीय खगोल शास्त्रियों का तर्क था कि बुद्धिमान लोग अपरिवर्ती, परिशुद्ध स्थिरांक नहीं खोज पाते क्योंकि जानने के लिए हम प्रकृति की निरंतरता को समय के खंडों में बांटते हैं, जिन्हें थोड़ा कृत्रिम ढंग से व्यवस्थित रूप से एकरूप माना जाता है। वे कुल मिलाकर वही बात कह रहे थे जो सदियों बाद व्हाइटहेड ने कही कि विज्ञान की प्रमुख समस्या वह खाई है जो हमारे खंडित अनुभवों को ऐकिक कार्य-कारण विश्व (unitary causal world) से पृथक करती है, जो अनुभवों के पीछे ओझल है। यहां तक कि जो लोग ज़ोर-शोर से नई पद्धतियां प्रस्तुत कर रहे थे वे भी इस बात को स्वीकार करते थे। जैसे शेन (1074) ने कहा था, "आकाश में क्या है, यह जानना मुश्किल नहीं है" क्योंकि आकाश हमारे अध्ययन में शामिल नहीं है; दूसरे शब्दों में मापन अनिवार्य रूप से अमूर्तिकरण की प्रक्रिया है। और ज़ू क्सी शायद दुनिया के पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने यह बताया था कि सटीकता और परिशुद्धता के बीच उल्लेखनीय अंतर है। उनकी सटीकता को आजकल हम बोधगम्यता कहते हैं, आधुनिक विज्ञान ने इस चीज़ को लगभग सत्रहवीं सदी के मध्य में तिलांजलि दे दी थी।

ये एक ऐसे विज्ञान के कर्मियों के गौरतलब अवलोकन हैं जो मात्रात्मक था और है तथा पूर्वानुमान जिसका सरोकार था और है। हमारे स्थिरांक बदल गए हैं मगर विज्ञान की समस्याएं नहीं बदली हैं। पाश्चात्य विज्ञान ने हिरेक्लिटस के बाद आम तौर पर इन समस्याओं को अनदेखा ही किया है। इसका मकसद प्रकृति, जिससे हम जानकारी हासिल

करते हैं, को बोधगम्य बनाना नहीं रहा है, बल्कि अपने फायदे के लिए उसका दोहन करने का रहा है। यह बताना ज़रूरी है कि इस तरह की तसल्लियां एकदम गलत हैं कि क्वांटम भौतिकी ऐसा करती है। क्वांटम अनिश्चितता पूरी तरह एक गणितीय मुद्दा है - जो ज़ू क्सि के सटीकता के प्रति सरोकार से कोसों दूर है। जो सबक हमने नहीं सीखा है उसका सम्बंध अवधारणा और परिघटना के परस्पर सम्बंध से है। प्राचीन चीनी खगोल शास्त्रियों का आग्रह था कि हमारे सौंदर्य-बोध की सर्वेच्च कसौटी औकेम्स रेज़र या ज्यामितीय प्रस्तुतीकरण नहीं बल्कि यह होना चाहिए कि हमारे वैज्ञानिक विवरण और सिद्धांत उस प्रकृति की जटिलता व समृद्धता के साथ न्याय करें, जिससे हम सारी जानकारी प्राप्त करते हैं। इस मापदंड के सतत आव्हान के बगैर पूर्वानुमान (आधुनिक विज्ञान का सहचर) अनिवार्य रूप से घटकवादी और सीमाकारी तत्व रहेगा। मेरे ख्याल में यह बात कम दिलचस्प नहीं है कि पाश्चात्य कामकाजी वैज्ञानिक प्रायः ये सवाल नहीं उठाते और जब उठाते हैं तब इन्हें विज्ञान से बाहर की बातें समझा जाता है, कई बार तो इन्हें उठाने वाले वैज्ञानिक स्वयं भी इन्हें विज्ञान से बाहर की बातें मानते हैं। यह एक आम धारणा रही है कि पश्चिम में विज्ञान इसलिए फला-फूला क्योंकि ईश्वर की यहूदी-ईसाई संकल्पना एक नियम-प्रदाता की थी और इसने प्रकृति के नियमों की खोज को बढ़ावा और सहारा दिया है मगर इसके विपरीत मुझे लगता है कि जिस चीज़ को पश्चिम विज्ञान कहता है, वह चीन में एक समय के बाद विकसित नहीं हुई क्योंकि चीनी विज्ञान में निहित रूप से व्याख्या का बहुत आग्रह था और घटकवाद के प्रति अस्वीकृति थी। ध्यान देने की बात यह है कि यह आग्रह व अस्वीकृति कामकाजी वैज्ञानिकों से आए थे, विज्ञान के दार्शनिकों से नहीं।

विज्ञान के नाम पर मात्र उस विज्ञान को बढ़ावा दिया गया है, जो तकनीकी नियंत्रण से जुड़ा है, मगर यह स्पष्ट है कि यदि हम तकनीकी नियंत्रण को हटा दें, तो विज्ञान को परिभाषित करने वाले दो ही मापदंड शेष रहते हैं - तार्किकता और प्रयोग-आधारित विधि (rationality and empirical method), और ये दो मापदंड कई सारे मानव क्रियाकलापों के लक्षण हैं, जो होना भी चाहिए, और कम से कम एक बौद्धिक परंपरा में इन्हें विज्ञान माना भी गया है। मैं प्रोफेसर विजय वर्मा से अपनी क्षमा याचना को एक बार फिर दोहरा दूं क्योंकि कल भोजन से पहले बातचीत में वे मुझे समझा रहे थे कि यदि समाज वैज्ञानिक व अन्य लोग प्राकृतिक विज्ञान द्वारा प्रदत्त विधि का उपयोग करते हैं, तो वे ही इसके लिए जवाबदेह हैं क्योंकि हमने उन्हें ऐसा करने को नहीं कहा है। मेरी गुज़ारिश है कि प्रोफेसर वर्मा के पास हाथ झाड़ने का विकल्प नहीं है क्योंकि यदि हम सब एक ही दुनिया के हिस्से हैं (और जहां तक मुझे पता है, दुनिया एक ही है) तो उनके पास यह विकल्प नहीं है। यदि हम सब एक ही प्रकृति और एक ही दुनिया के अंग हैं, तो मुझे यह बताने के लिए उनकी ज़रूरत नहीं है कि मैं क्या कर सकता हूं और क्या नहीं कर सकता। वैसे तो हम एक कदम और आगे जाकर यह दलील दे सकते हैं कि पुनर्निर्मिति विज्ञान ही एकमात्र असली विज्ञान है क्योंकि यह स्वयं को तकनीकी हित से दूर कर लेता है और, जैसा कि विटगेंस्टाइन कहेंगे, चीज़ों को जस-का-तस छोड़ देता है; मगर यदि हम इतना आगे न जाना चाहें तो भी हमें इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि जब प्राकृतिक विज्ञान भी प्रमाणवाद (positivism) से आगे जा पाते हैं, तो वे भी पुनर्निर्मिति विज्ञान ही हो जाते हैं, इसीलिए तो प्राकृतिक विज्ञान में कल्पनाशीलता की बातें होती हैं। यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि तकनीक की घुसपैठ की आधी-अधूरी समझ ही विज्ञानवाद (scientism) के मूल में है, जो प्रायः उन प्रयासों का लक्षण होती है जिन्हें अन्य विज्ञानों (मेरे अपने विज्ञान - भाषा विज्ञान समेत) का न्यूटनीकरण कहा जाता है।

ऐसे प्रयासों में ज़ोखिम यह रहता है कि उन पर संभाविता का सिद्धांत और मात्रात्मक विधियां, या जिसे मैं अतिवाद (maximalism) कहता हूं, हावी हो जाएंगे, जो बनावटी कटौतियों को बढ़ावा देता है जबकि स्वयं अपने formalist calculus को अंकुश में रखता है। जैसे हाल के दिनों में जनरेटिविज़्म में इंटरफेस नामक चीज़ पर बहुत ज़ोर दिया गया है (जनरेटिविज़्म का मत है कि कुछ नियमों का उपयोग करके भाषा की सारी संरचनाओं का निर्माण किया जा सकता है)। इंटरफेस हमेशा से भाषा वैज्ञानिकों के काम का आधार रहा है, सिवाय जनरेटिव परंपरा में, जहां भाषा उपकरण की स्वायत्तता को स्थापित करने के चक्कर में उसने स्वयं के द्वारा विकसित फॉर्मल मशीनरी के हर टुकड़े का उपयोग भाषा को संज्ञान की एक अनूठी परिघटना के रूप में प्रस्तुत करने हेतु किया। मैंने दो दशक से ज़्यादा यह दलील देते और दर्शाते बिताए हैं कि ज़रूरत एक अवधारणात्मक न्यूनता की है, क्योंकि इससे न सिर्फ हमें उन तथ्यों का विवरण करने में मदद मिलती है जो नियम-कायदों (regulative) से परे हैं जिसे अक्सर भाषाई दक्षता के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, बल्कि इससे हमें संज्ञान के अन्य क्षेत्रों से कड़ियां बनाने में भी मदद मिल सकती है।

ध्यानपूर्वक तथ्यों की जांच करने से पता चलता है कि जिस चीज़ को दक्षता कहकर पेश किया जाता है वह मात्र व्याकरणविद द्वारा एकत्रित अपेक्षाकृत विखंडित तथ्यों की साफ-सुथरी पुनर्व्यवस्था होती है। मगर इस साफ-सुथरेपन को हासिल करने के लिए जो केल्कुलस विकसित किया गया है, जिसे यथार्थ की हैसियत हासिल है, को सही नहीं

कहा जा सकता क्योंकि जैसे ही आप कॉन्स्टीट्यूटिव (इमैनुएल कान्ट का शब्द) की ओर कदम बढ़ाते हैं, तो सब गड़बड़ होने लगता है। तथ्य यह है कि जर्मन-भाषियों की तरह मेन्डेरिन व वियतनामी भाषा बोलने वाले लोग भी अंग्रेज़ी शब्दों का उच्चारण करते समय अंतिम व्यंजन को नहीं बोलते, जबकि जर्मन के समान मेन्डेरिन या वियतनामी भाषा में अंतिम व्यंजन को अनुच्चारित छोड़ने का कोई नियम नहीं है। यह तथ्य उच्चारण विज्ञान में 1960 व 1970 के दशक में जोड़ी गई तकनीकी मशीनरी की धज्जियां उड़ा देता है। इसी प्रकार से शब्द-आकारिकी (मॉर्फोलॉजी) में भी मैंने यह दर्शाने की कोशिश की है जब हम प्रथम भाषा और द्वितीय भाषा के अर्जन को देखते हैं और भाषाओं के संपर्क को देखते हैं, तो मॉर्फोलॉजी की प्रिय तकनीकी धारणाएं और इन धारणाओं के इर्द-गिर्द बुनी गई भारी-भरकम तकनीकी मशीनरी की चमक फीकी पड़ जाती है। इस क्षेत्र में, रमाकांत और प्रबल दासगुप्ता ने मुझे प्रायोगिक रूप से यह साबित करने में मदद की है, इस चहेती मशीनरी को त्याग देने से विवरणात्मक समृद्धता पर कोई आंच नहीं आती और दरअसल इससे हमें विवरणात्मक समृद्धता हासिल करने में मदद ही मिलती है, जिसे प्राचीन चीनी लोग 'संतुलन' कहते थे। वास्तव में हमारे प्रयोग ने इस क्षेत्र में सोपानबद्ध (हायरार्किकल) संरचना की चूलें हिला दी हैं, जो एक ऐसी चीज़ है जिसे समकालीन भाषा विज्ञान सत्य मानकर चलने का आदी हो चुका है और इसी पर पलता है। ऐसा लगता है कि इस क्षेत्र में इसकी भारी-भरकम मशीनरी ज्यामिती के विभिन्न पहलू कैद करने के लिए बनाई गई है, जिनकी मॉर्फोलॉजी में कहीं कोई ज़रूरत नहीं है।

वैसे यह देखकर खुशी होती है कि हॉली (2005) जैसे पॉज़िटिविस्ट (प्रमाणवादी) अब यह दलील देने को तैयार हैं कि हमें 'स्टेम' (धातु) जैसी धारणाओं की कोई ज़रूरत नहीं है और शायद कुछ मॉर्फोलॉजी सीखने को भी उत्सुक हैं। मैं आपको भाषा विज्ञान नामक छोटे-से अखाड़े में चल रही तकरारों से परेशान नहीं करना चाहता। मैं जो सामान्य मुद्दा बताना चाहता हूं, वह यह है कि नॉर्मेटिव, रेगुलेटिव और एम्पिरिकल (मानक-आधारित, नियम-आधारित और अनुभव-आधारित) के बीच के भेद को अनदेखा करना आसान है, एक ऐसा भेद जिसे प्रायः विज्ञान/गैर-विज्ञान के भेद के बराबर माना जाता है, और परिशुद्धता को सटीकता मान बैठना भी आसान है, और ज़रूरत इस बात की है कि जब हम अपने मनपसंद ग्रहों का अध्ययन करें तो पूरे आसमान पर भी नज़र रखें। इसका मतलब यह नहीं है कि हम ग्रहों का अध्ययन सावधानीपूर्वक उस गहनता व परिशुद्धता से न करें, जो टेक्नॉलॉजी से लैस भौतिक विज्ञानों ने हमें दी है। बदकिस्मती से उत्तर-आधुनिकतावादी हमें यही करने को आमंत्रित करते हैं। मैं विज्ञान के रंग और सिद्धांतों का जेंडर पता करने के खिलाफ नहीं हूं, मगर मुझे इस बात पर यकीन नहीं है कि क्या ऐसी कवायदों के परिणामों को रंग का विज्ञान अथवा जेंडर का सिद्धांत कहना ठीक होगा। यह कदापि ज़रूरी नहीं है कि विज्ञान की नकल करने के चक्कर में क्वांटमीकरण या विज्ञानीकरण करें, मगर इतना तो ज़रूरी है कि हम उस विश्लेषणात्मक गहनता को अपनाएं जो इस तरह के विज्ञान ने हमें एक औज़ार के रूप में दी है; मगर किसी देश के नक्शे को ही देश मान लेना भी गलत होगा। ज्ञानशास्त्रीय इकाइयों को यह कहकर प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए कि उनका एक वास्तविक अस्तित्व है। बदकिस्मती से मेरा अपना विषय ज्ञानमूलक और यथार्थमूलक (एपिस्टेमोलॉजी और ओन्टोलॉजी) के बीच व्यापक गफलत से लबरेज़ है। यह एक ऐसी चीज़ है जिसे चोम्स्की 'और क्या' कहकर झेलने को तैयार रहे हैं; यह उन्होंने पियाजे के प्रत्युत्तर में कहा था।

यह सच है कि जो सर्वोत्तम विवरण हम दे सकते हैं वही हमारा ज्ञान है, मगर कुछ आधुनिक वैज्ञानिकों का घनघोर प्रमाणवाद मात्र तकनीकी परिशुद्धता है, इसका सटीकता या व्याख्या से कुछ लेना-देना नहीं है। मैं यह आग्रह करना चाहूंगा कि हमें हरेक विज्ञान में कमियां ढूंढने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि उन विज्ञानों में कार्यरत वैज्ञानिक यह काम करते ही हैं, हमें तो अंतर्वैज्ञानिक (विज्ञानों के बीच) खाइयों पर बात करना चाहिए, और इस मामले में यह ज़रूरी नहीं है कि तथाकथित प्राकृतिक विज्ञानों और सामाजिक विज्ञानों के बीच की खाई को जीव विज्ञान और भौतिकी के बीच मौजूद खाई से कम या ज़्यादा चुनौतीपूर्ण माना जाए - ये दोनों बराबर डरावनी या बराबर संभावनाओं वाली हैं। इसी प्रकार सापेक्षता और क्वांटम मेकेनिक्स के बीच की खाई भी है और भेजे और दिमाग (brain and mind) के बीच की खाई भी है। पहली खाई भौतिक शास्त्रियों का ध्यान खींचती है और दूसरी संज्ञान शास्त्रियों का, मगर एकीकरण हासिल करने के लिए हमें समानताएं देखनी होंगी, आसमान के वे हिस्से देखने होंगे जो गैर-सत्रहवीं सदी की माहौल में संयोग से नज़र आते हैं।

मैं अपने क्षेत्र से एक उदाहरण लेता हूं। हालांकि कृत्रिम बुद्धि के जनक पिछले एक दशक से भी ज़्यादा समय से मुझे सचमुच की मशीनी बुद्धि का कायल करने का प्रयास करते रहे हैं और जनरेटिविज़्म के जनक मुझे नियमों, सिद्धांतों के तंत्र, या इस सप्ताह वे इसके लिए जिस भी शब्द का उपयोग करें, के गुणों का कायल करने की कोशिश करते रहे हैं, जो वे पिछली आधी सदी से प्रस्तुत करते आ रहे हैं, इसके बावजूद मुझे यकीन नहीं है कि नियमों की

कोई परिपूर्ण व्यवस्था भी भाषा क्षमता का सही विवरण बन सकती है जब तक कि उसमें अर्थ की अंतर्निहित अपेक्षा को स्थान न दिया जाए। या यह देखिए कि हम सपनों की तंत्रिका क्रिया को काफी अच्छे से समझते हैं मगर यह बहुत कम समझते हैं कि सपने होते क्या हैं या ये वास्तविक जीवन की स्मृतियों और प्रतिक्रियाओं को कैसे रूपांतरित करते हैं। ज़ी द्वारा दी गई उपमा का इस्तेमाल करें तो इन खाइयों पर सरसरी नज़र डालने से पता चलता है कि हमारे द्वारा वैज्ञानिक दावे करने के लिए अलग किया गया हरेक खंड वास्तव में एक निरंतरता में एक बिंदु है - दिमाग/भेजा, तर्क/भावना, वगैरह। एक बार फिर बात यह नहीं है कि तथाकथित सख्त विज्ञानों से जो कुछ हमने सीखा है या आगे भी सीख सकते हैं, उसे खारिज कर दें बल्कि मुद्दा यह है कि हम याद रखें कि जिस शहर की एकेडमी ने अपने प्रवेश द्वारा लिखवा रखा था कि "गणित से अनभिज्ञ कोई व्यक्ति यहां प्रवेश न करे", उस शहर के एक प्रतिष्ठित नागरिक ने महसूस किया था और दर्शाया था कि स्वयं गणित को भी ठोस बुनियाद पर खड़ा होना चाहिए।

यह ठीक है कि हम प्राकृतिक विज्ञान सीख सकते हैं और सीखना चाहिए मगर शायद प्राकृतिक विज्ञानों को भी अन्य विज्ञानों से सीखना चाहिए, जिन्हें वे कई बार तो विज्ञान मानने से भी इन्कार करते हैं। जिस एकीकरण को हम महत्व देते हैं वह सिर्फ वहीं तक सीमित लगता है जिसे प्राकृतिक विज्ञान एकीकरण मानते हैं, जिसके कुछ पहलुओं को मैंने ऊपर खाइयों के उदाहरण देकर स्पष्ट किया है। हमें जिस एकीकरण की ज़रूरत है वह इससे आगे जाना चाहिए और उसमें न सिर्फ टेक्नॉलॉजी से जुड़े विज्ञानों को बल्कि उन विज्ञानों को भी जोड़ा जाना चाहिए जो मनुष्य के स्वयं अपने बारे में ज्ञान पर केंद्रित रहे हैं। यथार्थ के ज़्यादा विस्तृत मानचित्र पर मस्तिष्क-विश्व और मस्तिष्क-समाज के सम्बंधों के लिए स्थान होना चाहिए क्योंकि जैसा कि मैं कल कह रहा था, लोग कभी यह नहीं पूछते कि जीवन जीव विज्ञान विभाग के ज़िम्मे है या भौतिक शास्त्र विभाग के या रसायन शास्त्र विभाग के। इस एकीकरण को पाने में न तो भाववाद, न उत्तर-आधुनिकतावादियों द्वारा प्रस्तुत रैडिकल सापेक्षतावाद और न ही विज्ञान के उत्साही मदद कर सकते हैं। जब हम ऐसा नक्शा बनाएंगे, तो उम्मीद है कि हम समस्याओं से बच पाएंगे और, जैसा कि तर्कवादियों की प्रवृत्ति होती है, अपने सिद्धांतों या नियमों को कुदरती नियमों के रूप में पेश नहीं करेंगे, अपनी परिशुद्धता को सटीकता के रूप में प्रस्तुत नहीं करेंगे।

भावी विज्ञान से हमें सत्यता की मांग करनी चाहिए और हमारे आज के विज्ञान शिक्षकों को उस बात का अर्थ समझना चाहिए जो जॉन सर्ल ने करीब एक दशक पूर्व कही थीः यथार्थ के विभिन्न स्तर और उनके बीच कार्यरत कार्य-कारण सम्बंध एक विरोधाभासी चित्र प्रस्तुत करते हैं। यहां मैं चाहूंगा कि आप अपने हैण्डआउट के आइटम क्रमांक 2 को देखें। निर्मम भौतिक तथ्यों के रूप में प्रतिपादित सारे तथ्य एक हायरार्की में फिट होते हैं जिसमें शुरू में सब कुछ भौतिक होता है, फिर रासायनिक, जीव वैज्ञानिक, साभिप्राय (intentional) और सामाजिक तथ्यों को अलग-अलग करने के छोटे-छोटे डिब्बे बनने लगते हैं, यह क्रम सरल से जटिल तथ्यों की ओर बढ़ता है, यानी यदि बढ़ती जटिलता की दृष्टि से देखें तो क्रम उल्टा हो जाता है।

हालांकि यह सच है कि कितनी भी इच्छा करें या इरादों में कितना भी दम हो, गुरुत्वाकर्षण के नियमों से किनारा करना असंभव है और यही बात हमें अन्य परंपराओं में भी बताई जाती है कि मनुष्य उड़ नहीं सकता। और इससे पता चलता है कि हम भी उसी प्रकृति के हिस्से हैं, जिसका हम वस्तुनिष्ठ ढंग से अध्ययन करने का दावा करते हैं - इस व्याख्यान को समाप्त करने का मेरा इरादा सम्बंधित तंत्रिका और शारीरिक क्रियाओं को मंद करने का काम कर सकता है। सलीमी (2005) इस बात को इस रूप में रखते हैं कि निम्नीकरण करने वाला कार्य-कारण किसी जटिल निर्मम परिघटना को इस हद तक प्रभावित कर सकता है कि उसको शुरू करने वाली परिस्थिति ही बदल जाए। हम तब तक गैर-प्रमाणवादी विज्ञान का निर्माण नहीं कर सकते जब तक कि हम आसमान के एक ऐसे प्रस्तुतीकरण से तालमेल न बना लें जिसके नीचे समकेंद्रीय वृत्त बने हों। लिहाज़ा जब ऊपर वर्णित दोतरफा सातत्य का प्रतिबिंब हमें मानव मस्तिष्क के लचीलेपन में दिखाई पड़ता है, तो यह समस्त घटकवाद पर संदेह करने का एक कारण है और इस संभावना का जश्न मनाने का सबब है कि एक ऐसे विज्ञान से मुक्ति संभव है जो न सिर्फ टेक्नॉलॉजी से बंधा हुआ है बल्कि उसका गुलाम भी है। जो वैज्ञानिक वास्तव में टेक्नॉलॉजी को ही विज्ञान मानते हैं, उनके बारे में तो कुछ न कहना ही बेहतर है।

अंतिम विश्लेषण में यही कहा जा सकता है कि न सिर्फ तार्किकता से परे कोई वैज्ञानिक विधि नहीं है, बल्कि हम इन्सानों के लिए तार्किकता मात्र एक उपयोगी उपकरण नहीं बल्कि अपरिहार्य भी है। जहां तक विधि का सवाल है, कौन-सी विधि कारगर होगी यह उस क्षेत्र पर निर्भर करता है जिसके अंतर्गत खोजबीन की जा रही है, और यह तो हम निश्चित तौर पर नहीं जानते कि हमें वह हासिल करने में कौन-सी विधि मदद करेगी जिसे प्राचीन चीनी लोग सटीकता और संतुलन कहते थे और जिसे हम व्याख्या कहते हैं। आम तौर पर जिसे विज्ञान कहा जाता है, वह ज्ञान

का वह भंडार मात्र है जो किसी वजह से थोड़ा ज़्यादा विश्वसनीय रहा है, बनिस्बत उन यथार्थ परिघटनाओं की समझ के जो हमारे ज्ञान की पकड़ के बाहर रही हैं। ह्यूम द्वारा 1748 में अपने फोर्क के प्रतिपादन के बाद मानव व सामाजिक विज्ञानों में हुए कार्य ने हमें सिखाया है कि मानव ज्ञान के एकीकरण की ओर बढ़ने के लिए हमें इतना ही करना होगा कि उनके (ह्यूम के) 'मात्रा व संख्या' की जगह 'अमूर्त गहन तर्क' रख दें। चूंकि किसी विधि की प्रभाविता का निर्णय बाद में ही हो सकता है, इसलिए नुस्खेनुमा दिशानिर्देश बेकार हैं, और वर्तमान सामाजिक विज्ञान का इतिहास व्याख्या को पूरी तरह कुरबान करके थोक में मात्रा व संख्याओं के आयात का इतिहास है।

वास्तव में समापन करते हुए, प्राकृतिक विज्ञानों द्वारा संस्थागत रूप से अर्जित अहंकार की पर्याप्त आलोचना करने के बाद, मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि मैं उन स्वनाम धन्य लोगों के अहंकार को भी समर्थन नहीं दूंगा, जो विज्ञान को जाने बगैर दर्शन की हिमायत करते हैं और दावा करते हैं कि एकीकरण तो हासिल किया जा चुका है या काफी समय पहले ही किया जा चुका था, अब तो इतना ही करना है कि लंबे समय से अस्तित्व में रहे मार्क्सवाद या किसी अन्य सिद्धांत के नवीन संस्करण को थोड़ा तेल-पानी करके चमका देना है। मैं बर्ट्रैण्ड रसेल से बहुत प्रभावित हूं कि वे इतनी मेहनत करके यह बताने की कोशिश करते हैं कि कैसे रसायन शास्त्र भौतिकी का ही एक रूप है या चोम्स्की से बहुत प्रभावित हूं कि वे जीव विज्ञान और रसायन शास्त्र के एकीकरण के मुद्दों की चर्चा करते हैं, मगर मैं इस बात से दुखी हूं कि मेरे दार्शनिक मित्रों में किसी भी विज्ञान के वास्तविक तथ्यों और गणना की विधियों के ज्ञान का सर्वथा अभाव है। विज्ञान शिक्षा को संपूर्णता देने और विजय वर्मा की शर्त को पूरा करने का एक ही तरीका है कि हम संपूर्ण चित्र को दिमाग में रखें। धन्यवाद।

टीकाकारों की प्रतिक्रिया

अमिताभ मुखर्जीः अपने सवालों-टिप्पणियों को रोककर आगे बढ़ते हैं। चूंकि विजय वर्मा का ज़िक्र बार-बार आया है, इसलिए लाज़मी है कि वे मंच पर आएं।

प्रोफेसर विजय वर्मा

एक निहायत विचारोत्तेजक प्रस्तुतकीरण के लिए धन्यवाद, प्रोफेसर राजेंद्र सिंह। मैं लगातार अपने ज़िक्र से बहुत खुश और भयभीत हूं और आपके द्वारा प्रस्तुत तर्क की सतर्कता को देखते हुए मैं आपका ही अनुकरण करूंगा - मुझे उपलब्ध सीमित समय में आशु प्रतिक्रिया देना तो संभव नहीं है, इसलिए मैं भी अपनी लिखित प्रतिक्रिया में से पढ़ने की इज़ाजत चाहूंगा।

शुरू में ही साफ कर दूं कि एक टीकाकार के रूप में मैं जो कुछ कहने जा रहा हूं, वह एक प्राकृतिक वैज्ञानिक के नज़रिए से है। मेरी शिक्षा एक सैद्धांतिक भौतिक शास्त्री के रूप में हुई है और उसी नज़रिए से प्रतिक्रिया देना चाहूंगा। मेरा ख्याल है कि प्रोफेसर सिंह के तर्क की विषय वस्तु इतनी सघन है कि श्रोताओं के लिए यह उपयोगी होगा कि मैं दो-तीन मिनट लेकर उनके बिंदुओं की मेरी समझ को प्रस्तुत कर दूं ताकि हम आगे की चर्चा को थोड़ी स्पष्टता से समझ सकें।

प्रोफेसर सिंह ज्ञान शास्त्र की समस्याओं और तत्व मीमांसा (वस्तुओं के अस्तित्व व मर्म का अध्ययन) की समस्याओं को आमने-सामने रखते हैं और पूछते हैं कि हम किसी भी चीज़ का मर्म कैसे जान सकते हैं। वे सख्त (हार्ड) विज्ञानों में प्रयुक्त वैज्ञानिक विधि की छानबीन करते हैं और उसे किसी भी परिघटना के मर्म को जानने के एक साधन के रूप में खारिज कर देते हैं। वे बताते हैं कि भौतिक शास्त्र के सारे सिद्धांत भौतिक परिघटना के मॉडल निर्माण के प्रयास हैं और मॉडल तो हमेशा मॉडल ही रहेगा और इसे कभी भी वह वास्तविक वस्तु या परिघटना मानने की भूल नहीं करना चाहिए जिसका वह मॉडल है। उनके मुताबिक भौतिक शास्त्र के सिद्धांत किसी देश के नक्शे के समान हैं, और जिस तरह से नक्शा कितना भी परिशुद्ध और विस्तृत क्यों न हो, देश नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार से भौतिक शास्त्र के सिद्धांत, चाहे कितनी ही परिशुद्धता से भौतिक तंत्रों के व्यवहार की भविष्यवाणी करें, यह नहीं कहा जा सकता कि वे सम्बंधित परिघटना के मर्म को कितनी सटीकता से पकड़ पा रहे हैं। वे चेतावनी देते हैं कि हमें भौतिकी के सिद्धांतों या नियमों को प्रकृति के नियमों के रूप में प्रस्तुत करने से बचना चाहिए। वे हमें यह भी याद दिलाते हैं कि तार्किकता (rationality) से परे कोई वैज्ञानिक विधि नहीं है, कि जिसे हम विज्ञान कहते हैं वह महज ज्ञान का वह भंडार है जो संयोगवश अन्य से थोड़ा ज़्यादा विश्वसनीय है। उनका यह भी मत है कि प्राकृतिक विज्ञान को अपना अहंकार त्याग देना चाहिए कि वह कुछ अपेक्षाकृत गैर-जटिल तथ्यों का सावधानीपूर्वक अध्ययन कर सकता है और (कम से कम अपने लिखित पर्चे में) निष्कर्ष निकालते हैं कि यथार्थ के संदर्भ में तार्किकता ही आगाज़ है और अंतिम शब्द है।